REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.2331(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 7 | ISSUE - 9 | JUNE - 2018

इंदिरा गाँधी : एक रोमांचक व्यक्तित्व

जयदीप कुमार , डॉ. संजय कुमार सिंह
(शोध छात्र), इतिहास विभाग, एम.एम.एच. कॉलेज, गाजियाबाद
एसो. प्रोफेसर, इतिहास विभाग, एम. एम. एच. कॉलेज, गाजियाबाद

सारांश

31 अक्टूबर 1984 की सुबह, जब वे प्रतिदिन के समान ही कार्यालय जाने के लिए अपने नियत पथ पर पैदल जा रही थी और सभी के अभिवादन का जवाब नमस्ते से दे रही थीं, सहसा ही अपने अंगरक्षकों के द्वारा मार दी गई। इंदिरा नेहरू गाँधी की हत्या आतंकवाद का एक बड़ हमला था। इंदिरा गाँधी की मृत्यु उसी प्रकार से हुई थी, जिस प्रकार का उनका जीवन था अर्थात व्यक्तियों से घिरे हुए परन्तु पूर्णतः एकाकी। यह वास्तव में एक महागाथा का हिंसक अंत था। दुःखद था परन्तु गौरवपूर्ण कालक्रम को समेटे एक चमकदार व्यक्तित्व का अवसान हो चुका था।

प्रस्तावना

कांग्रेस की प्रथम महिला अध्यक्षा एनी बेसेंट के कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में इलाहाबाद आगमन के ठीक दो सप्ताह बाद 19 नवम्बर 1917 को आनंद भवन के उत्तर – पश्चिमी कोने पर स्थित एक कमरे में कमला नेहरू के गर्भ से एक बालिका ने जन्म लिया।[1] दादा मोतीलाल नेहरू और दादी स्वरूपरानी नेहरू सहित परिवार के अन्य सदस्य बालिका के आगमन से कुछ व्यथित हुए, परन्तु जवाहर लाल नेहरू ने पूर्ण उत्साह के साथ अपनी बच्ची का नाम इंदिरा प्रियदर्शिनी रखा। उन्होंने इंदिरा को क्रांति की संतान बताया क्योंकि उसी वर्ष रूस में एक क्रांति सम्पन्न हुई थी।[2] इंदिरा गाँधि का बचपन उस वातावरण में व्यतीत हुआ जहाँ राष्ट्रीय स्वंत्रता आंदोलन अपने नये युग में प्रवेश कर रहा था। महात्मा गाँधी ने जैसे ही कांग्रेस के आंदोलन की डोर हाथ में ली, वैसे ही इंदिरा गाँधी की स्मृतियों का दौर आरम्भ हुआ। 1920 में जब आनंद भवन में पहली बार विदेशी वस्त्रों की होली जलाई गई तो इंदिरा के अनुसार यह उनकी प्रथम स्मृति थी।[3] उन्हें माचिस से तब से बड़ा भय लगता रहा।

इंदिरा को मोती लाल नेहरू द्वारा इलाहाबाद के एक ब्रिटिश स्कूल सेंट सेसिलिया में भर्ती कराया गया, परन्तु जवाहर लाल द्वारा ब्रिटिश संस्थाओं के बहिष्कार की राय के बाद अंततः उनकी शिक्षा घर पर ही आरम्भ करवाई गयी। अपनी माता की बीमारी के इलाज के लिए 1926 में वह पहली बार देश से बाहर स्विट्जरलैंड गईं। 1927 के दिसम्बर में कांग्रेस अधिवेशन में मद्रास में इंदिरा नेहरू में पहली बार किसी राजनीतिक सभा को निकट से देखा और उनके अनुसार उस समय तक वे स्थितियों को कुछ–कुछ समझने लगी थीं। मार्च 1930 में इंदिरा नेहरू ने अपनी माँ द्वारा निर्मित प्रथम राजनीतिक संघ 'वानर सेना' की सदस्यता ग्रहण की। यह बच्चों की एक ऐसी संस्था थी, जो कांग्रेस का सहयोग करने को बनाई गई थी।[4] मई 1931 में महात्मा गाँधी की सलाह पर नेहरू ने इंदिरा को पूना के एक स्कूल में डाला, जहाँ एक पारसी दम्पत्ति के संरक्षण में अधिकांश कांग्रेसियों के परिवार के बच्चे पढ़ने जाते थे। तीन वर्षों के बाद नेहरू ने इंदिरा को गुरूदेव रविन्द्र नाथ टैगोर के पास शांति निकेतन में अध्ययन के लिए भेजा। परन्तु 10 माह बाद ही 1935 में उन्हें अपनी माता के पास (बीमारी के बढ़ने के कारण) वापस आना पड़ा।[5] कमला नेहरू को पुराने क्षय रोग ने बुरी तरह से घेर लिया था। इंदिरा को एक बार फिर जवाहर लाल की अनुपस्थिति में अपनी माता को इलाज के लिए यूरोप ले जाना पड़ा। जर्मनी के ब्लैक फारेस्ट नगर में ही 28 फरवरी 1936 को कमला नेहरू का देहांत हो गया।[6] स्वयं को व्यस्त रखने के लिए इंदिरा नेहरू ने पिता की सलाह पर आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय (इंग्लैंड) में प्रवेश ले लिया। 26 मार्च 1942 को अनेक सामाजिक विरोधों को दरकिनार करते हुए, महात्मा गाँधी और जवाहरलाल नेहरू के

समर्थन से इंदिरा नेहरू और फिरोज गाँधी का विवाह हुआ।[7] इस सम्बंध के परिणाम स्वरूप 1944 में राजीव गाँधी और 1946 में संजय का जन्म हुआ।

1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में फिरोज और इंदिरा दोनों को ही जेल जाना पड़ा था। देश की स्वतंत्रता के लिए दोनों ही जवाहर लाल नेहरू के निर्देशन में कार्यरत रहे। अंततः 1947 में 15 अगस्त को देश की स्वतंत्रता के साथ ही राजनैतिक स्तर पर भी एक नए परिदृश्य का उदय हुआ। इंदिरा गाँधी ने अपने पिता की छत्रछाया में सार्वजनिक जीवन का अनुभव प्राप्त करना अधिक श्रेयष्कर समझा। 1955 में कांग्रेस की कार्य समिति की सदस्या के रूप में पद ग्रहण किया। 2 फरवरी 1959 को यू॰ एन ढेबर के स्थान पर इंदिरा गाँधी ने कांग्रेस अध्यक्ष का पद सम्भाला परन्तु अक्टूबर में ही पदत्याग कर दिया। इसी के कुछ समय बाद इंदिरा गाँधी को एक व्यक्तिगत आघात लगा, जब सितम्बर 1960 में उनके पति और संसद के प्रभावी वक्ता फिरोज गाँधी का देहावसान हो गया।[8] कुछ समय के लिए उनका सम्पर्क राजनीति से टूटना स्वाभाविक ही था। परन्तु एक बार फिर वे कांग्रेस कार्यसमिति की सदस्या के रूप में परिदृश्य में वापस आईं और अब उन्हें नेहरू के उत्तराधिकारी के रूप में देखा जाने लगा। परन्तु 1962 के चीनी आक्रमण ने नेहरू की विरासत को कुछ अधिक मजबूत हाथों में देने का वातावरण उत्पन्न कर दिया था।

इसी कारण 1964 में जवाहर लाल नेहरू की मृत्यु के साथ ही इंदिरा गाँधी ने स्वयं को उनके उत्तराधिकारी की दौड़ से बाहर कर लिया। अंततः लाल बहादुर शास्त्री देश के प्रधानमंत्री बने, जिनके अनुरोध पर इंदिरा गाँधी ने सूचना एवं प्रसारण मंत्री के रूप में केन्द्रीय मंत्रिमंडल में प्रवेश किया।[9] 1965 के भारत – पाक युद्ध में मिली विजय के उपरांत जब ताशकंद में समझौता वार्ता के मध्य ही लाल बहादुर शास्त्री का आकस्मिक निधन ही गया तो एक बार फिर उत्तराधिकारी का प्रश्न सामने आया। एक तरफ मोरारजी देसाई प्रधानमंत्री पद के दावेदार थे, वहीं कांग्रेस अध्यक्ष के॰ कामराज व उनके सिंडिकेट समूह ने नेहरू की विरासत के नाम पर इंदिरा गाँधी को आगे किया। गुप्त मतदान में 19 जनवरी 1966 को इंदिरा गाँधी ने 355 वोट प्राप्त कर के 169 मत प्राप्त करने वाले मोरारजी देसाई को परास्त किया।[10] अब वो भारत की प्रधान मंत्री थीं, जिनके साथ नेहरू की विरासत, कांग्रेस का बड़ा समर्थन और उन सबसे अधिक देशवासियों की आशाएँ जुड़ी थीं। वास्तव में यह वो क्षण था, जहाँ से इंदिरा गाँधी के जीवन, उनकी प्राथमिकताओं और नीतियों में बड़ा परिवर्तन आया।

प्रधानमंत्री के रूप में उनके सामने अनेक समस्याएं थीं। कुछ तो अत्यंत गंभीर थीं, यथा पंजाब का प्रश्न और दक्षिण में भाषा की समस्या। फिर भी इंदिरा गाँधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने 1967 में चुनावों में पुनः सफलता प्राप्त करके कुछ नए कदमों की और प्रस्थान किया। नए प्रधानमंत्रित्व काल में इंदिरा गाँधी ने बैंक राष्ट्रीयकरण, प्रिवीपर्स उन्मूलन और भारत की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए अनेक वित्तीय सुधार लागू किए। परन्तु उनके क्रांतिकारी सुधारों को तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष व उनके समान ही मानसिकता वाले समूह ने स्वीकार नहीं किया और इंदिरा गाँधी का विरोध आरम्भ कर दिया। अंतः इंदिरा गाँधी ने पहले तो वित्तमंत्री मोरारजी देसाई को हटाया और बाद में अपने समर्थकों के साथ कांग्रेस के सिंडिकेट समूह पर प्रभाव बढ़ाना आरम्भ किया। यह आसान था क्योंकि 1967 के चुनावों में सिंडिकेट दल के प्रभुत्व को चोट पहुंची थी।

अतः कांग्रेस के भीतर इंदिरा विरोधी समूह का निर्माण हुआ, जिसमें पुराने दुश्मन अर्थात सिंडिकेट और मोरारजी देसाई एक साथ थे। मार्च 1969 तक आते – आते इंदिरा गाँधी को प्रधानमंत्री पद से हटाने के लिए गहन मंत्रणा आरम्भ हो चुकी थी। राष्ट्रपति डा॰ जाकिर हुसैन की अकस्मात मृत्यु ने कांग्रेस की फूट की भूमिका लिख दी थी। सिंडिकेट समूह ने अपने एक सदस्य नीलम संजीव रेड्डी को नए राष्ट्रपति के रूप में निर्वाचित करवाने के लिए कांग्रेस का उम्मीदवार बनवाया। इंदिरा गाँधी ने इस षड़यंत्र को समझ कर कांग्रेस के सभी सदस्यों से अपनी अन्तर्रात्मा की आवाज पर मत देने का आग्रह किया।[11] वे व्यक्तिगत रूप से उपराष्ट्रपति वी॰ वी॰ गिरी के पक्ष में थीं जो निर्दलीय के रूप में लड़ रहे थे। उनके आह्वान के कारण वी॰ वी॰ गिरी आधिकारिक कांग्रेसी उम्मीदवार संजीव रेड्डी को हटाकर राष्ट्रपति बन गए। लगभग 1/3 कांग्रसियों ने गिरी के पक्ष में मत दिया था।

अंततः नवम्बर 1969 में सिंडिकेट ने इंदिरा गाँधी को पार्टी से निकाल दिया। इंदिरा गाँधी ने नया संगठन कांग्रेस (आर) स्थापित किया। अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के 705 में से 446 सदस्य इंदिरा गाँधी के पक्ष में आ गए। अब वे अपने दल और सरकार की निर्विघ्न नेता थीं।[12] संसद में वामपंथियों ने समर्थन दिया,

जिससे उनकी सरकार बची रही। परन्तु अपनी अल्पमत सरकार को अपने कार्यक्रमों को लागू करने में असहज महसूस करने के कारण दिसंबर 1970 में इंदिरा गाँधी ने नियत कार्यकाल से 1 वर्ष पूर्व ही चुनाव कराने का निर्णय लिया। उनके पुराने विरोधियों ने ग्रैंण्ड एलायंस के नाम से संयुक्त गठबंधन बनाया। परन्तु 1971 के चुनावों के समय इंदिरा गाँधी अपनी लोकप्रियता के शिखर की और बढ़ रही थीं। जनता का उन्हें लगभग पूर्ण समर्थन था, यह चुनाव परिणामों से स्पष्ट हुआ, जिसमें 518 में से 352 स्थानों में उनके दल को विजय मिली।[13] उनके विराधियों का सफाया हो चुका था। इन चुनावों में सफलता के साथ – साथ इंदिरा गाँधी की सर्वोच्च परीक्षा का कार्यक्रम भी साथ लाया था, और इस परीक्षा को बांग्लादेश संकट का नाम दिया जा सकता है। पूर्वी पाकिस्तान (अब बांग्लादेश) में एक संवैधानिक प्रावधान को नहीं लागू करने के नाम पर तथा आंतरिक अशान्ति को दबाने के लिए मार्च 1971 में सैन्य कार्यवाही की गई। पाकिस्तान के तत्कालीन सैनिक तानाशाह जनरल याह्या खान ने इस कार्यवाही द्वारा भारत पर दबाव बढ़ाने की नीति का प्रयोग किया। बांग्लादेश में सैनिक अत्याचारों से बचने के लिए लगभग 1 करोड़ लोग सीमापार करके भारत में आ गए। इससे आर्थिक स्थिति पर बहुत बोझ पड़ा तथा भारतीय व्यवस्था भी अस्त – व्यस्त हो गयी। परन्तु अंत में विश्व स्थितियों से निराश हाकर उन्होंने संघर्ष का मार्ग ग्रहण करने का निश्चय किया। 1971 में सोवियत संघ से हुई 20 वर्षों की सैन्य संधि इस आत्म – विश्वास का कारण था।

आदेश के अनुसार सेना 4 दिसंबर को कार्यवाही के लिए तैयार थी। परन्तु 3 दिसंबर को ही पाकिस्तान ने भारत की पश्चिमी सीमा पर युद्ध आरम्भ कर दिया। इस कार्यवाही का जवाब देते हुए सेना ने पूर्वी और पश्चिमी मेर्चों पर तीव्रगति से अपना काम किया और 16 दिसंबर 1971 को पाकिस्तान को ढाका में आत्मसमर्पण करना पड़ा। स्थितियों को देखते हुए उसने पश्चिमी मोर्चे पर भी युद्ध विराम का प्रस्ताव मान लिया।[14] एक नए देश बांग्लादेश का जन्म हो चुका था और यह इंदिरा गाँधी के प्रयासों का नतीजा था। उनकी कठोर दृढ़ता व नेतृत्वाकारी क्षमता से सम्पूर्ण विश्व परिचित हो चुका था। इंदिरा गाँधी लोकप्रियता के शिखर पर थीं, भारत में उन्हें दुर्गा का आधुनिक अवतार माना जा रहा था। इसका प्रमाण 1972 के मार्च मास में देश के राज्यों में हुए चुनावों में कांग्रेस को मिली प्रचण्ड सफलता के रूप में सामने आया। अब इंदिरा गाँधी भारत, कांग्रेस और जनता की सर्वोच्च नेता थीं।

परन्तु इसके बाद ही परिस्थितियाँ इंदिरा गाँधी के अत्यंत प्रतिकूल होने लगीं। अब अधिकांश समस्याओं का समाधान वार्ताओं के स्थान पर एक पक्षीय निर्णयों के आधार पर किया जाने लगा। चाहे वह 1974–75 के जनआंदोलनों के जवाब के रूप में आपातकाल लगाना हो या पंजाब की समस्या के समाधान का तरीका। आंतरिक स्थिति भी इंदिरा गाँधी के अनुकूल नहीं रही, विशेषकर आपातकाल के बाद। सरकारी नीतियों का सही क्रियान्वयन नहीं किया जा रहा था और भ्रष्टाचार के आरोपों के छींटे स्वयं इंदिरा गाँधी के परिवार पर पड़ने लगे। पंजाब समस्या इंदिरा गाँधी के लिए नासूर ही बन गई थी और अंततः इसी के कारण इंदिरा गाँधी को अपने प्राण होंम करने पड़े। इस प्रकार यह एक अप्रत्याशित पराभव ही कहा जाएगा क्योंकि इंदिरा गाँधी की सत्ता को उनकी मृत्यु के समय भी चुनौती देने वाला कोई नहीं था। आपातकाल के लिए भले ही जनता ने उन्हें क्षमा कर दिया था, किन्तु यह भी सत्य है कि इंदिरा गाँधी की लोकप्रियता में उल्लेखनीय गिरावट आ चुकी थी। India is Indira & Indira is India का नारा अब पहचान खो चुका था। फिर भी इंदिरा गाँधी एक करिश्माई व्यक्तित्व थीं, इससे किसी को भी इंकार नहीं हो सकता। प्रायः ऐसे व्यक्तित्व जटिल ही होते हैं। इंदिरा गाँधी की बात करने का अर्थ केवल उनके व्यक्तित्व के पहलुओं को जानना नहीं है बल्कि उस सम्पूर्ण काल में भारत की स्थिति के रेखांकन से है। इंदिरा गाँधी में ये द्वन्द्व सदैव चलता रहा था और वो ये कि देश अब तक किधर चल रहा था और आग किस ओर ले जाया जाए ! पुरानी पीढ़ी के मैदान से हटने और नई पीढ़ी के आदर्शों के कारण देश के शासन की संस्थात्मक गलतियां विद्यमान रहीं और यह इंदिरा गाँधी की पीढ़ी के नेताओं की विवशता भी थी। परन्तु उनकी यह विवशता कालांतर में उनके व्यक्तित्व का एक भाग बन गई, विशेषकर 1969 के बाद के काल में और यही संजय गाँधी के उत्थान का कारण बना।

इंदिरा गाँधी का व्यक्तित्व ऐसा था जो स्मरणीय है। जिसमें चैन है तो आँसू भी हैं, राष्ट्रवाद है तो अंध सत्तावाद भी है। संवेदना है तो उसे मिटाकर रख देने वाली व्यवहारिक क्रूरता भी। वंशवाद की परिपाटी को तोडने की कला से वे परिचित भी थीं और उसे तोड़कर परिवारवाद की नयी बेल चढ़ाने में भी उनका कोई सानी नहीं था। अपनी नीतियों में वह कितनी सख्त थीं, इसका उदाहरण पाकिस्तान के दो टुकड़े करके

बांग्लादेश के निर्माण के रूप में विश्व को दिया। एक बार जब अमेरिका से मुंह मोड़ लिया तो फिर कभी उसके दबाव को भी सहने से इंकार कर दिया। विश्व स्तर पर उन्होंने जनसंघर्षों का पक्ष लिया, विशेषकर स्वतंत्रता और लोकतंत्र के नाम पर, परन्तु जब वे संघर्ष भारत में आरम्भ हुए तो उसे आपातकाल के दानव से कुचलवाने में भी उन्हें संकोच नहीं हुआ। उनके निकट सहयोगी वामपंथी आज तक इंदिरा गाँधी को समझने की चेष्ठा कर रहे हैं। वे समझ नहीं पाते कि इंदिरा गाँधी को सामंती और पूंजीवादी शक्तियों के रक्षक के रूप में देखा जाए। वे राजनीतिक क्षेत्र में असीम प्रेम की सीमा से लेकर विस्तृत घृणा में फैली हुई हैं।

उनका राजनीतिक कौशल गजब का था, जो विभिन्न स्थितियों का सामना करते हुए विकसित हुआ था। वे सबसे सलाह लेती थीं, परन्तु निर्णय अंतिम रूप से उनका होता था।[15] लोकतंत्र को बनाए रखने का निर्णय उनका था तो पुत्र मोह को हावी होने देने का निर्णय भी केवल उन्हीं का था। वे अपने निर्णयों को पूर्ण साहस के साथ लागू करती थीं, भले ही निर्णय की प्रकृति से सहयोगी सहमत हों या नहीं। एक निष्ठुर राजनीतिक योद्धा के रूप में उन्होंने आर्थिक स्थितियों के मोर्चे, कांग्रेस विभाजन, बांग्लादेश संकट, पंजाब का निर्माण, आपातकाल, ऑपरेशन ब्ल्यूस्टार के प्रश्नों पर अपना स्पष्ट मत ही सामने रखा था। 70 के दशक में भारत उन कुछ देशों में से एक था, जिसने तेल संकट पर काबू पाया था और इसके लिए इंदिरा गाँधी का नेतृत्व उत्तरदायी था। हरित क्रांति को प्रोत्साहित करके इंदिरा गाँधी ने भारत के हाथों के भीख के कटोरे को तोड़ दिया था। इंदिरा गाँधी के नेतृत्व वाले 16 वर्षों में भारत आर्थिक मंदी के उन दौरों से बचा रहा, जो अन्य पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं के लिए अत्यंत साधारण बात थी।[16] अपने सम्पूर्ण राजनीतिक काल में इंदिरा गाँधी ने अपना सामाजिक आधार समाज के सबसे निचले वर्ग में विस्तृत किया। सीधे संवाद करने की उनकी क्षमता ने उन्हें इस वर्ग में अतीव लोकप्रियता प्रदान की। गरीबी हटाओं के नारे और 20 – सूत्री कार्यक्रमों के द्वारा इंदिरा गाँधी ने इस वर्ग को लगभग सम्मोहित कर लिया था। यही वो वर्ग था, जिसने 1977 में पूरी तरह नकारने के बाद पुनः 1980 में इंदिरा गाँधी को सत्ता तक पहुंचाया। इंदिरा गाँधी की आर्थिक नीतियाँ वामपंथी रूझान की होने के बाद भी भारत की मिश्रित अर्थव्यवस्था के लिए पूर्णतः उपयुक्त रहीं।

परन्तु 16 वर्षों के अपने शक्तिशाली शासन में इंदिरा गाँधी संस्थागत विकास के लिए अधिक कार्य नहीं कर सकीं। प्रशासन, नीति निर्धारण, क्रियान्वयन का अभाव स्पष्ट था। अलगाववाद से निबटने के लिए उनके द्वारा कोई रणनीतिक ढांचा नहीं बनाया गया, जिसके कारण पहले कश्मीर के प्रश्न को अनसुलझा रहने दिया गया, फिर आसाम और पंजाब में अविचारित नीति अपनाई गई। विशाल बहुमत के बाद भी अनेक समस्याओं की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया और बहुमत का प्रयोग आपातकाल जैसी अविचारित कार्यवाहियों को अनुमोदित करने में किया गया। न तो किसी नई संस्था की स्थापना की गई और न ही पुरानी संस्थाओं को शक्ति सम्पन्न करने का प्रयास किया गया। इसके विपरीत अनेक महत्वपूर्ण संस्थाओं की शक्ति को कुंद किया गया, यथा संसद और इसके लिए इंदिरा गाँधी को लोकतंत्र के इतिहास में कभी क्षमा नहीं किया जाएगा। जैसे – जैसे उनका कार्यकाल बढ़ता गया, वे व्यक्तिगत शक्ति व साधनों पर अधिकाधिक निर्भर होती चली गई। अपनी पार्टी के जनाधार वाले नेताओं को ही उन्होनें हाशिए पर डाल दिया और राज्यों के मुख्यमंत्री के पद पर ऐसे व्यक्तियों को रखा जो इंदिरा गाँधी के समर्थन के बिना बने नहीं रह सकते थे। इस कार्य में इंदिरा गाँधी की अधिकांश ऊर्जा व्यय होती थी और बाद के समय में वे इसी में उलझकर रह गयी थीं और देश के रणनीतिक विकास का उनके पास कोई समय ही नहीं बचा।

उन्हें अपने पद से मोह हो चुका था और इससे किसी को इंकार नहीं हो सकता कि प्रधानमंत्री के उत्तराधिकारी के रूप में उन्होंने संजय गाँधी को आगे कर अपना प्रभाव अपने बाद भी स्थापित रखने की चेष्ठा की थी। वो परिवारवाद की धारणा से कहां तक सहमत थीं, यह पूर्णतः साफ नहीं है परन्तु पुत्र मोह से वे बुरी तरह ग्रस्त थीं। संजय गाँधी के उत्थान के लिए उन्होंने अपनी समस्त राजनैतिक शक्ति का प्रयोग किया और अपने अयोग्य, अहंकारी तथा एक सीमा तक क्रूर आपराधिक मानसिकता वाले पुत्र को अंततः बिना उत्तरदायित्व के सम्पूर्ण शक्ति सौंप दी, वो भी समांतर सत्ता के रूप में। वास्तव में इंदिरा गाँधी की समस्त निर्णय क्षमता संजय गाँधी पर आकर समाप्त हो जाती थी या ये कहा जाना चाहिए कि एक समय के बाद, जब इंदिरा गाँधी ने संजय गाँधी को आगे किया, इंदिरा गाँधी के निर्णय अंतिम रूप से संजय गाँधी के द्वारा किए जाने लगे। संजय गाँधी इंदिरा गाँधी के राजनीतिक जीवन में ग्रहण के समान थे, जिन्होंनें इंदिरा गाँधी और कांग्रेस को लगभग समाप्त कर दिया था। उनका प्रभाव केन्द्रीय सरकार, विभिन्न राज्य सरकारों, कांग्रेस, उच्च प्रशासनिक

अधिकारियों आदि सभो पर था। वे आपातकाल के विचार के जनक कहे जा सकते हैं और आपातकाल के अधिकांश अत्याचार उन्हीं के सर थे। परन्तु इसके बाद भी आपातकाल और सामान्य जनता के असंख्य दुःखों के उत्तरदायित्व से इंदिरा गाँधी को मुक्त नहीं किया जा सकता क्योंकि संजय गाँधी नाम की मुसीबत इंदिरा गाँधी द्वारा उत्पन्न, पालित और समर्थित थी, जिसकी कम से कम प्रधानमंत्री से उम्मीद नहीं ही की जा सकती है। इंदिरा गाँधी ने मित्र तो बनाए परन्तु विश्वस्त नहीं और यह उनकी एक विशेष नीति थी। वे अकेले ही कार्य करना पसंद करती थीं और सम्भवतः शासन भी आपातकाल ने उन्हें अपनी इच्छा के अनुकूल शासन का मौका अवश्य दिया, परन्तु इस अवसर पर उन्होंने संजय गाँधी को साथ लिया और असफल रहीं। यह नहीं कहा जा सकता है कि वे डिक्टेटरशिप अथवा एकात्मक शासन को अपनाना चाहती थीं या नहीं परन्तु उनकी कार्यशैली, विशेषकर आपातकाल में, इस ओर संकेत जरूर करती है कि वे इस विचार से पूर्णतः असहमत भी नहीं थी।

1977 के चुनावों के ठीक पहले उमा वासुदेव ने यह कहा कि इंदिरा गाँधी की मानसिक अवस्था उस स्थिति में पहुँच चुकी थी कि यदि परिथितियाँ थोड़ी भी अनुकूल होती तो वे मार्शल लॉ के विकल्प को भी अपना सकती थीं।[17] संकेत स्पष्ट था कि इंदिरा गाँधी किसी भी कीमत पर सत्ता नहीं छोड़ना चाहती थीं और इसके लिए वे किसी भी सीमा तक जाने को तैयार रहती थीं। 1975 में आपातकाल भी उसी कड़ी का एक हिस्सा था, जबकि लोकतंत्र की दुहाई देने वाली इंदिरा गाँधी यह समझती थीं कि जो लाग बड़े – बड़े सिद्धान्तों की बातें करते हैं, उनके निरन्तर सवालों की बौछार से उन्हें (इंदिरा गाँधी) को जो परेशानी होती थी और अन्य जिस भी प्रकार की प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष चुनौतियां थीं – उनका एक ही जवाब है और वा है संजय गाँधी। संजय गाँधी इंदिरा के अपराधों के सामधान के रूप में उपलब्ध थे। और यही इंदिरा गाँधी की सबसे बड़ी असफलता थी के उन्हें लोकतंत्र के अपने आधार समर्थकों अर्थात सामान्य जनता पर ही विश्वास नहीं था। पंजाब समस्या के सम्बन्ध में 1984 का उनका निर्णय उचित था, परन्तु उन्हें स्वयं ही इस पर विश्वास नहीं था। अतः स्वयं के साथ किए गए उनके इस दुराग्रह ने उनके जीवन पर ही ग्रहण लगा दिया। वे शुरू से ही दृढ़ विश्वास की प्रतीक थीं। जब उनका यह आत्म विश्वास ही समाप्त हो गया तो में उनका जीवन भी समाप्त हो गया।

संदर्भ सूची

फ्रैंक, कैथरीन, इंदिरा : द लाइफ ऑफ इंदिरा नेहरु गाँधी, हार्पर कॉलिन्स, लंदन, 2001, पेज 13.

नेहरु, जवाहरलाल, ग्लिम्स ऑफ वर्ल्ड हिस्ट्री, किताबिस्तान, इलाहाबादए1934, पेज 2.

गाँधी, इंदिरा, माई ट्रूथ, विकास पब्लिके''ान्स, नई दिल्ली, 1981, पेज 13.

फ्रैंक, कैथरीन, पेज 63.

वही, पेज 98, 99.

वही, पेज 113.

वही, पेज 173.

वही, पेज 258.

वही, पेज 279, 280.

वही, पेज 290.

चंद्रा, बिपन, मुखर्जी मृदुला, मुखर्जी आदित्य, स्वतंत्रता के बाद का भारत, हिन्दी माध्यम क्रियान्वयन निदे''ालय, नई दिल्ली, 2002, पेज 317.

वही, पेज 317.

वही, पेज 320.

वही, पेज 324.

वही, पेज 357.

वही, पेज 357.

वासुदेव, उमा, इंदिरा गाँधी के 2 चेहरे, राधाकृष्ण प्रका''ान, नई दिल्ली, 1977, पेज 198.